International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 708-710

प्राचीन भारतीय शिक्षा केन्द्र ''नालंदा''

अतुल कुमार सिंह
शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

प्राचीन बौद्ध–स्थल नालन्दा के भग्नावशेष नालन्दा जिले में बड़गाँव नामक ग्राम के निकट स्थित है जो जिला मुख्यालय बिहार शरीफ से लगभग 12 किमी0 दक्षिण राजगीर (प्राचीन राजगृह) से लगभग 11 किमी0 उत्तर तथा राजधानी पटना से लगभग 90 किमी0 दक्षिण–पूर्व में स्थित है। सड़क मार्ग द्वारा यह राजगीर, बिहार शरीफ व पटना से भली भाँति जुड़ा हुआ है। निकटतम रेलवे–स्टेशन नालन्दा यहाँ से लगभग 2 किमी0 की दूरी पर है।

नालंदा के संबंध में छठी और सातवीं शताब्दी ई0 के पूर्वाद्ध में हमारी जानकारी का स्रोत प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग, नालंदा में तीन वर्ष रहे थे और एक अन्य चीनी यात्री इत्सिंग ने वहां उसी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बिहार में 10 वर्ष बिताए थे। इन चीनी यात्रियों के विवरणों में पता चलता है कि उस युग में नालंदा में एक हजार मठवासी (भिक्षु) और छात्र थे। किंतु इत्सिंग के समय में भारत में इस विद्यालय में अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या लगभग तीन हजार थी। नालंदा में चीन और दक्षिण–पूर्व एशिया के भी छात्र अध्ययन के लिए आया करते थे। नालंदा में की गई खुदाइयों से पता चलता है कि वहां बहुत बड़े क्षेत्र में सुनियोजित निर्मित मठ और मंदिर थे। नालंदा विश्वविद्यालय बौद्धों को दान में मिले गांवों की आय से ही चलता था। इस प्रकार शिक्षकों और छात्रों को अधिकांश सुविधाएं गांवों की ही आय से प्राप्त होती थी।

नालंदा विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए प्रवेश पाना बड़ा कठिन था। यहां अध्ययन के लिए देश के विभिन्न भागों से तो छात्र आते ही थे, देश के बाहर से भी आते थे। छात्र अतिथिशाला में रहते थे। अपनी विद्वता के लिए प्रसिद्ध अध्यापक छात्रों से वार्तालाप किया करते थे और इसी क्रम में वे छात्रों के मानसिक गुणों, आचरण और जीवन–पद्धति की जानकारी प्राप्त कर लेते थे। विश्वविद्यालय और अतिथिशाला, दोनों में दिनचर्या बहुत व्यवस्थित और नियमित थी। सब को समय की जानकारी एक जल–घड़ी की सहायता से दी जाती थी। नालंदा में शिक्षकों और छात्रों की कुल संख्या दस हजार थी जिसमें से 8500 तो छात्र थे और शेष 1500 शिक्षक की श्रेणी के थे, 500 शिक्षक 30 संग्रहों की और शायद दस शिक्षक 50 संग्रहों की व्याख्या कर सकते थे। ह्वेनसांग के समय में शीलभद्र नालंदा विश्वविद्यालय के अध्यक्ष थे। उसके पहले कांची के धर्मपाल इस पद पर थे, जो शीलभद्र के शिक्षक रह चुके थे। शीलभद्र के बाद धर्म कीर्ति अध्यक्ष थे।

विश्वविद्यालय में प्रातःकाल से लेकर सूर्यास्त तक बड़े और छोटे दोनों तरह के समूहों या कक्षाओं में आजकल की ही तरह लेक्चर दिए जाते थे। संगोष्ठी प्रणाली की तरह शिक्षकों और छात्रों के बीच प्रश्न पूछने और परस्पर विचार–विमर्श की प्रक्रिया चलती थी। कहते हैं, नालंदा में उस समय ज्ञान प्राप्ति के जितने भी विषय और क्षेत्र थे, उनकी शिक्षा दी जाती थी, विषय दोनों प्रकार के थे, ब्राह्मणवादी और बौद्ध, धार्मिक ओर धर्मनिपेक्ष, दार्शनिक और व्यावहारिक, विज्ञान और कला इत्यादि। किंतु नालंदा में वस्तुतः अधिक जोर 18 वेदों और अन्य ग्रंथों, हेतु विद्या, शब्द विद्या, अथर्ववेद, सांख्य और संस्कृत व्याकरण इत्यादि के साथ–साथ महायान पर बल दिया जाता था। अध्ययन के समापन बाद उपाधि प्रदान की जाती थी। उपाधियाँ योग्यता और सामाजिक स्थिति, दोनों के आधार पर दी जाती थी।

नालंदा विश्वविद्यालय में पुस्तकालय के संबंध में विस्तृत जानकारी तिब्बती ग्रंथों में दी हुई है। बताया गया है कि पुस्तकालय एक विस्तृत क्षेत्र में अवस्थित था और उसे काव्यमय नाम दिया गया था। धर्मनन पुस्तकालय के तीन बड़े–बड़े भवन थे, जिनके नाम थे– रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक जिनमें से रत्नसागर नौमंजिला था। जिसमें पांडुलिपियां और दुर्लभ कृतियाँ संग्रहित थीं, जैसे प्रज्ञापरमिता–सूत्र इत्यादि। 1197–1203 में बख्तियार खिजली ने नालंदा को नष्ट कर दिया था और पूरी संस्था को जला दिया था।

गुप्त शासनकाल में : तारानाथ के पूर्वोक्त लेखों से ऐसा मालूम होता है कि नागार्जुन के समय में भी नालंदा बौद्ध धर्म का केन्द्र था और बाद में भी कई शताब्दियों तक इसी उन्नत दशा में रहा। परन्तु स्मरण रहे कि यहाँ जो खुदाई हुई है उससे यह सिद्ध नहीं होता कि गुप्त काल के पहले भी यहाँ कोई आबादी थी। खुदाई में सबसे पुरानी वस्तुएं जो यहाँ मिलीं उनमें एक तो समुद्रगुप्त का ताम्रपट्ट और दूसरी वस्तु कुमारगुप्त का एक सिक्का है। जिसका समर्थन ह्वेनसांग के इस लेख से भी होता है कि ''इस स्थान को शुक्रादित्य नाम के एक राजा ने पहले शुभ शकुन के कारण संघाराम बनाने के लिये चुना था। अनन्तर बुद्धगुप्त, तथागत गुप्त, बालादित्य और वज्र नामक उसके वंश के राजाओं ने इसके आस–पास और संघाराम बनवाये।'' इन नामों में से कुछ नाम गुप्तवंश के सम्राटों के थे। इसलिये यह माना गया है कि ये सब नाम पाँचवी और छठी सदियों के बीच शासन करने वाले गुप्त सम्राटों के हैं।

नालन्दा के संघाराम कुमारगुप्त प्रथम और उसके बाद के गुप्त राजाओं ने बनवाये थे। इसका समर्थन इस बात से भी होता है कि ईसवी पाँचवीं सदी के चीनी यात्री फाहियान ने अपने वृत्तांत में नालन्दा के किसी संघाराम का उल्लेख नहीं किया। उसने केवल इतना ही लिखा है कि 'यहाँ नालों नाम का एक गाँव है जहाँ शारिपुत्र का जन्म और मरण हुआ था, यह 'नालों' गाँव ही नालन्दा का वाचक हो सकता है।

हर्ष के शासन काल में : ह्वेनसांग ने नालन्दा में 80 फुट ऊँची ताँबे की बुद्धमूर्ति देखी थी जिसे छठी सदी के आरम्भ में अशोक–राज के वंशज अंतिम राजा पूर्णवर्मन ने स्थापित किया था। इसमें सन्देह नहीं कि कन्नौज के प्रतापी राजा हर्षवर्धन (ई0 606–647) ने अपने उदार दान से नालन्दा विश्व–विद्यालय की बहुत सहायता की थी।

हर्ष ने यहाँ एक पीतल का संघाराम बनवाया। जब ह्वेनसांग ने इस स्थान का निरीक्षण किया तो यह संघाराम अभी बन रहा था। हर्ष की जीवनी का लेखक लिखता है कि हर्षवर्धन एक सौ गाँवों की आमदनी नालन्दा के बौद्ध विहारों को स्थायी दान में देता था और इन गाँवों में रहने वाले दो सौ गृहस्थ भिक्षुओं के भरण पोषण के लिये आवश्यक चावल, घी, दूध आदि वस्तुएं देते थे। वह लिखता है कि क्योंकि विद्यार्थियों को जीवन–निर्वाह के लिये वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में मिल जाती थीं। इसी निश्चिन्तता के कारण दत्त–चित्त होकर विद्या के निरन्तर अभ्यास से वे शास्त्रों में पूर्ण योग्यता प्राप्त करते थे। यही निश्चिन्तता उनकी सफलता का बीजमंत्र थी। लेखों से पता लगता है कि नालन्दा विश्वविद्यालय के छात्रों को दैनिक जीविका के लिये भिक्षा नहीं मांगानी पड़ती थीं।

हर्ष नालन्दा के भिक्षुओं का बहुत सम्मान करता था और अपने आप को उनका दास कहता था। कन्नौज के राजकीय समारोह के अवसर पर एक हजार के लगभग नालन्दा के भिक्षु उपस्थित थे। अतः नालन्दा की समृद्वि और सुव्यवस्था का मूल कारण राज–प्रसाद और राज–संरक्षण ही था।ह्वेनसांग ने लिखा है कि राजाओं की कई पीढ़ियों ने उत्तरोत्तर यहाँ निर्माण का काम जारी रखा और कुशल शिल्पियों तथा कलाकारों की सेवाओं के उचित प्रयोग से अद्भुत वास्तुओं का स्वरूप देखने में आया।

पालवंश के राजाओं का शासनकाल : पालवंश के राजाओं ने आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक शासन किया। वे राजा महायान सम्प्रदाय के अनुयायी और संरक्षक थे अपने समय में उन्होंने विक्रमशिला, सोमपुर, ओदन्तपुरी आदि स्थानों पर भी विहार बनवाये ।इन बहुत से बौद्ध केन्द्रों के बन जाने तथा धर्माचार्यो का काम बँट जाने के कारण नालन्दा का महत्व अवश्य कुछ घट गया होगा। तारानाथ ने यह भी लिखा है कि नालन्दा का नियंत्रण विक्रमशिला विहार के अध्यक्ष के अधीन था। फिर भी ऐसे शिलालेख और साहित्यिक प्रमाण काफी हैं जिनसे सिद्ध होता है कि पाल राजा नालन्दा की बौद्ध संस्थाओं के भरण पोषण के लिये उदार ह्रदय से दान देते रहे।

ह्वेनसांग–अपनी भारत यात्रा में ह्वेनसांग ने भी नालन्दा के कई मंदिरों और संघारामों का वर्णन किया है और बहुतों की उसने दिशाओं के क्रम से स्थिति भी बतलाई है उदाहरणः बुद्धगुप्त का संघाराम उसके पिता शक्रादित्य के बनवाये संघाराम के दक्षिण में था, और बुद्ध गुप्त के संघाराम के पूर्व में तथागतगुप्त का संघाराम था। बालादित्य का संघाराम तथागतगुप्त के संघाराम के उत्तर–पूर्व में और वज्र का संघाराम पश्चिम की दिशा में था। इसके अनन्तर मध्य भारत के किसी अज्ञात नामक राजा ने उत्तर की दिशा में एक बड़ा विहार बनवाया और इसके चारों ओर ऊँची चारदीवारी का निर्माण कराया जिसमें अंदर जाने के लिये केवल एक ही दरवाजा था। इनके अतिरिक्त ह्वेनसांग ने और भी संघारामों और स्तूपों की लंबी सूची दी है, जो उसने अपने समय में यहाँ देखे। नालन्दा के वर्तमान ध्वंसों की चीनी यात्री द्वारा वर्णित प्राचीन स्मारकों से एकात्मकता सिद्ध करने का जो प्रयास किया गया है वह बहुत कम सफल सिद्ध हुआ है इस असफलता का कारण यह है कि ह्वेनसांग के समय से लेकर नालन्दा के उजाड़ हो जाने तक छः सदियों का जो अंतर पड़ा उसमें कई नये वास्तु बने और पुरानों का रूप बदल गया।

पहले पहल ह्वेनसांग जब नालन्दा पधारा तो लोगों ने उसका हार्दिक स्वागत किया, यह यात्री यहाँ लंबे समय तक रहा। वह लिखता है कि नालन्दा के विश्वविद्यालय में विविध विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इनमें महायान और हीनयान सम्प्रदायों के धार्मिक ग्रंथ, हेतुविद्या शब्दविद्या और चिकित्सा विद्या शामिल थे। इनके अतिरिक्त अर्थववेद सहित समस्त वेद तथा हिन्दू धर्म के अन्य शास्त्र भी पढ़ाये जाते थे। चीनी यात्री के वर्णन से प्रतीत होता है कि उसके समय में नालन्दा शिक्षा एवं विद्या का अद्वितीय केन्द्र था।

''यहाँ के निवासी कई हजार भिक्षु उच्चकोटि के विद्वान तथा गुणी हैं। वे बहुत योग्य हैं और उनमें सैकडों ऐसे विद्वान् हैं जिनकी ख्याति दूर–दूर के देशों में पहुँच चुकी है। वे शुद्ध एवं आदर्श चरित्र के होते हैं और अपने धर्म का आचरण निष्कपट ह्रदय से करते हैं। संघ के नियम बहुत कड़े हैं। भारत के सब प्रदेशों के लोग उनका सम्मान और अनुसरण करते हैं। गम्भीर प्रश्नों पर विचार करने के लिए दिन भर का काल काफी नहीं होता। प्रातःकाल से रात तक ऐसे प्रश्नों पर विमर्श होता रहता है। वृद्ध और युवक एक दूसरे की सहायता करते हैं जिन्हें त्रिपिटक के विषयों पर विचार करने का सामर्थ्य नहीं ऐसे भिक्षुओं का बहुत कम आदर होता है और वे लज्जा से छिपे रहते हैं। शास्त्रार्थ में शीघ्र ख्याति प्राप्त करने तथा शंकाओं के समाधान चाहने वाले विद्वान दूर–दूर के नगरों से यहाँ बहुत संख्या में आते हैं। ऐसा करने से उनकी विद्वत्ता की बहुत प्रसिद्ध होती है। इसके लिए कई व्यक्ति अपने आप को नालन्दा के स्नातक कह कर लोगों में सम्मान प्राप्त करते हैं। शास्त्रार्थ में भाग लेने के लिए यदि बाहर से कोई विद्वान आए तो नालन्दा विश्वविद्यालय का द्वारपाल उनकी योग्यता की परीक्षा के लिये कुछ कठिन प्रश्न करता है इन प्रश्नों का उत्तर न दे सकने के कारण बहुत से विद्वान् वहीं से वापस चले जाते है। विद्यालय में प्रवेश के लिये विद्यार्थी को पहले प्राचीन और नवीन ग्रंथों का गहन अध्ययन करना आवश्यक है। अतः प्रवेश के लिये आये हुए विद्यार्थियों को शास्त्रार्थ में पहले अपनी योग्यता की परीक्षा देनी पड़ती है। नवागन्तुक दस विद्यार्थियों में सात या आठ ऐसे होते जो इस परीक्षा में सफल नहीं उतरते''।

नालन्दा में ह्वेनसांग का भारतीय नाम मोक्षदेव था। उसके चले जाने पर भी चिरकाल तक नालन्दा के निवासी उसे इसी नाम से स्मरण करते थे। उसके चीन लौट जाने के कुछ वर्ष बाद प्रज्ञादेव नाम के नालन्दा के एक भिक्षु ने उसे वस्त्रों का एक जोड़ा भेजा था और साथ ही यह भी लिखा था कि नालन्दा के उपासक ह्वेनसांग के चले जान के बाद तीस वर्षों के अंदर कम से कम ग्यारह चीनी और कोरियन यात्रियों ने नालन्दा की यात्रा की।

ई–त्सिंग–ह्वेनसांग के बाद दूसरा प्रसिद्ध चीनी यात्री जो भारत में आया वह ई–त्सिंग था। वह ई0 673 में भारत पहुँचा और बहुत देर तक नालन्दा में अध्ययन करता रहा। उसने अपने लेखों में नालन्दा के भिक्षुओं के जीवन का बहुत विशद् विवरण दिया है। इस जीवन को आदर्श मान कर उसने लिखा है कि समस्त संसार के बौद्धों को इसका अनुसरण करना चाहिए। उसके अनुसार नालन्दा विहार के भिक्षुओं की संख्या तीन हजार से अधिक थी। इनका भरण–पोषण पहले राजाओं के द्वारा दान दिये हुए दो सौ से अधिक गाँवों की आमदनी से होता था। उसने पाठ्य विषयों का भी विवरण दिया है। इनमें बौद्ध धर्म–ग्रन्थों के अतिरिक्त पाठ्य विषयों का भी विवरण दिया है। इनमें बौद्ध धर्म–ग्रन्थों के अतिरिक्त न्याय, दर्शन और संस्कृति व्याकरण का विशेष अध्ययन समाविष्ट था। वह उस कठिन अनुशासन और विनय की भी चर्चा करता है जो भिक्षुओं के जीवन में पाया जाता था।

सम्बद्ध प्रसिद्ध विद्वान : इस प्रसंग में उन विख्यात विद्वानों का उल्लेख करना आवश्यक है जिनके अगाध पाण्डित्य और पवित्र जीवन के कारण नालन्दा का यश चिरकाल तक सुरक्षित बना रहा। तारानाथ के लेखों नागार्जुन, आर्यदेव, असंग और बसुबन्धु महायान

सम्प्रदाय के प्रारम्भिक दार्शनिक विद्वान् नालन्दा के महा–पण्डित थे। इनके अनन्तर दिङ्.नाग का नाम आता है। इसने मध्य–युग की नवीन तर्कशैली का आविष्कार किया। यह दक्षिण भारत का रहने वाला था। शास्त्रार्थ में एक ब्राह्मण विद्वान् को परास्त करने के लिये इसे नालन्दा बुलाया गया था। दिङ्.नाग के अनन्तर नालन्दा का प्रसिद्ध पण्डित धर्मपाल था जो ह्वेनसांग के यहाँ आने के कुछ समय पहले अपने पद से मुक्त हो चुका था। इस चीनी यात्री के समय नालन्दा विहार का अधिष्ठाता शीलभद्र था। ह्वेनसांग ने इसी महा पण्डित से बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया था। ह्वेनसांग ने इसके पाण्डित्य और वयैक्तिक गुणों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। शीलभद्र का उत्तराधिकारी सम्भवतः धर्मकीर्ति था। तारानाथ ने लिखा है कि इस अंतिम बौद्धाचार्य ने शास्त्रार्थ में कुमारलील नाम के एक ब्राह्मण दार्शनिक को परास्त किया था। धर्मकीर्ति के अनन्तर नालन्दा का प्रसिद्ध पण्डित शान्तरक्षित हुआ जो तिब्बत के राजा खि–सोन–देउ–त्सन के निमंत्रण पर वहाँ गया और कई वर्ष वहाँ रहकर अन्त में सन् 762 में वहीं परलोक सिधारा। प्रायः इसी समय पद्मसम्भव भी तिब्बत गया और वहाँ उसने लामा–धर्म नामक संस्था का सूत्रपात करके बहुत ख्याति प्राप्त की। नालन्दा के लिये यह बड़े गौरव की बात थी कि इसके एक आचार्य ने तिब्बत के धर्म को ऐसा रूप दिया जो आज भी वहाँ प्रचलित है।

अतः यह बात स्पष्ट है कि नालन्दा विश्व–विद्यालय में अनेक उच्च कोटि के धर्माचार्य हुए जिनका यश दूर–दूर के देशों में पहुँचा और वहाँ चिरकाल तक जीवित रहा। सत्य है कि ''नालन्दा प्राचीन बौद्ध शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र रहा, जिसकी ख्याति सम्पूर्ण विश्व में फैल गई ''।

संदर्भ

1. अमलानन्द घोष – नालंदा.
2. अगने लाल – संस्कृति साहित्य में भारतीय जीवन, कैलाश प्रकाशन लखनऊ 1972.
3. आचार्य नरेन्द्र देव – बौद्ध धर्म दर्शन, विहार राष्ट्रभाषा पटना, 1971.
4. उपाध्याय,आचार्य बलदेव – बौद्ध मीमांसा, काशी वि0सं0–2011.
5. उपाध्याय, रामजी – प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, बोधभारतीय – देवभारतीय प्रकाशन इलाहाबाद 1966.
6. चतुर्वेदी, परशुराम – बौद्ध साहित्य की सांस्कृतिक झलक, इलाहाबाद 1958.
7. जैन, भागचनद्र – बौद्ध संस्कृति का इतिहास, नागपुर 1972.
8. पाण्डेय, डॉ0 गोविन्द चन्द्र– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ 2006.
9. बेनी प्रसाद – हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता 1931.
10. राय, उदय नारायण – 1. प्राचीन भारत में नगर तथा नगरीय जीवन, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद 1965.
11. 2. नगरों को आर्थिक जीवन तथा संगठन हिन्दुस्तानी भाग 22 – अंक दो 1961.
12. सिंह मदन मोहन – बुद्ध कालीन समाज और धर्म, विहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 1972.
13. सिंह, डॉ0 दामोदर – एशिया में बौद्ध मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ एवं नयी दिल्ली 1981.
14. शास्त्री चतुर्शेन – बुद्ध और बौद्ध धर्म, लखनऊ 1964.